International Indexed & Referred Research Journal, May, 2012. ISSN- 0974-2832, RNI-RAJBIL 2009/29954;VoL.IV *ISSUE-40

शोध पत्र- हिन्दी

सांस्कृतिक यथार्थबोध से रंगे राजेन्द्र मोहन के सामाजिक उपन्यास

* नानक सिंह

* शोध छात्र, दक्षिण भारत हिन्दी प्रसार सभा मद्रास

May, 2012

प्रस्तुत शोधपत्र में राजेन्द्रमोहन भटनागर के उपन्यासों में सामाजिक उपन्यासों में सांस्कृतिक यथार्थबोध के बारे में विचार किया गया है। अपनी संस्कृति के बिना मनुष्य किसी भी काम का नहीं है। हमारी संस्कृति अनमोल है। भारतीय रस्मो रिवाजों की दुनिया भर में पहचान है। अपितु इतना ही नहीं विदेशी लोग भी हमारी संस्कृति की तरफ बहुत अधिक आकर्षित हो रहे हैं। विदेशी लोग भारतीय रीतिरिवाजों के अनुसार शादी ब्याह रचा रहे हैं लेकिन दुख की बात है कि हमारी युवा पीढ़ी अपनी भारतीय संस्कृति को भूलती जा रही है और विदेशी संस्कृति को अपना रही है। जिसके परिणाम हमें आने वाले समय में देखने को मिल सकते हैं।

'संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में छाया हुआ है, यह एक आत्मिक गुण है जो मनुष्य स्वभाव में व्याप्त है। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं अपितु युग–युगांतर में होता है।'[1]

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार 'संस्कृति बुद्धि विवेक द्वारा जीवन को जान लेने का नाम है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के समान ही डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी भी संस्कृति को मनुष्य के विविध साधनों की सर्वोत्तम परिणति मानते हैं।[2] डॉ. देवराज ने संस्कृति को मानव–मात्र के चरम–मूल्य के रुप में स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में सभ्यता यदि साधनात्मक मूल्य है तो संस्कृति साध्यात्मक मूल्य। उन्होंने सभ्यता को मानव उपयोगिता के क्षेत्र में संबद्ध किया है और संस्कृति को मूल्यवान माना है।[3] शुद्ध करने की क्रिया ही संस्कृति है। जिससे मानवता का संस्कार हो, ऐसी शिक्षा–दीक्षा, रहन–सहन की संस्कृति के उद्‌भावक हैं। संस्कृति सामाजिक विरासत है और वह संचय से ही विकसित होती है।[4]

भारतीय संस्कृति में अनेक संस्कृतियों का मिश्रण है। भारतीय संस्कृति, मानवता, नैतिकता, उदारता तथा दयालुता आदि मूल्यों को प्रतिष्ठित करती है। भारतीय संस्कृति में 'वसुदैव कुटुम्बकम्' का समावेश है। यहां अनेक जातियों एवं धर्मो के लोग हैं, जिनमें परस्पर प्रेम एवं विश्वास की भावना स्पष्ट झलकती है। वास्तव में परंपरा से चली आ रही संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं, धार्मिक कटुता और विषमताओं को दूर करने तथा राष्ट्र में एकात्मकता की भावना फैलाने के लिए सांस्कृतिक चेतना महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

''सांस्कृतिक चेतना का उद्‌देश्य सहस्रो वर्षो की प्राचीन परिस्थिति को फिर से वापस लाना न होकर वर्तमान की समस्याओं का समाधान ढूंढना है। वास्तव में 'संस्कृति' समाज की आत्मा होती है, उसके किसी भी स्वरुप का परिवर्तन समाज का परिवर्तन होता है। संस्कृति के किसी भी अंग में थोड़ा सा परिवर्तन होने से समाज के आदर्श और मान्यताओं के नये प्रतिमान दिखाई देने लगते हैं। साथ ही विश्वास और आस्था की नयी अवधारणाएं जन्म लेने लगती हैं।

रीति–रिवाजों के प्रति उदासीन युवा पीढ़ी :–

भारतीय संस्कृति की असली पहचान उसके रस्मो–रिवाज हैं। भटनागर जी के उपन्यासों में रीति–रिवाजों का उल्लेख नाम मात्र का है। वर्तमान युवा पीढ़ी की रीति–रिवाजों तथा त्यौहारों के प्रति महानगरीय जीवन में पली–बड़ी आधुनिक युवा पीढ़ी में बढ़ रही उदासीनता को 'देवलीना' में चित्रित किया है। राजन बाबू बोले, 'मैं ही क्या आज तो सभी त्यौहारों के प्रति उदासीन हैं, त्यौहारों को हमारा नव संभ्रांत समाज' 'आउट ऑफ डेट' मानता है। दे हेट, देवलीना। दे थिंक दैट दीज आर द सेम्बुल ऑफ अवर बैकवर्डनेस।[5] रीतिरिवाजों के प्रति उदासीनता का अर्थ यह नहीं कि युवापीढ़ी भारतीय संस्कृति का सम्मान भूल गई हो। भारतीय संस्कृति के प्रति युवा पीढ़ी के अगाध प्रेम को आपने विभिन्न उपन्यासों में दर्शाया है। विदेशी संस्कृति में पल–बढ़कर भी बेनजीर और उसका भाई भारतीय संस्कृति में रंगे हुए हैं। 'उन्हें देखकर डैडी हैरत में थे कि इंग्लैंड जैसे 'कन्ट्री' में रहकर भी वे लोग आम भारतीयों जैसे हैं। उनमें कहीं से भी विलायतीपन ने स्पर्श नहीं किया।[6]

यद्यपि लेखक भारतीय संस्कृति पर खुलकर लिखने में असमर्थ रहा है, लेकिन जितना भी लिखा है, उसमें रीति–रिवाजों के प्रति युवा पीढ़ी की विमुखता के बावजूद भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम और सम्मान को दर्शाने में समर्थ रहा है। जहाँ साम्प्रदायिक दंगे और वैमनस्य की भावना ने चारों तरफ भय और आतंक का वातावरण फैला दिया है, वहीं अनेकता में एकता के द्वारा युवापीढ़ी ने मानव धर्म की स्थापना की है। भारतीय संस्कृति की विशालता, अनेकता में एकता और रिश्तों की गहराई के फलस्वरुप विदेशी भारतीय संस्कृति को अपनाने के इच्छुक हैं। वेट्रेस वुल्ला को लेखक ने इसी लक्ष्य से सृजित किया है। वस्तुतः उपन्यासकार भारतीय समाज में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी विसंगतियों के सूक्ष्म अंकन एवं विशद द्वारा स्वस्थ समाज की कल्पना को साकार करने में प्रयत्नशील रहा है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है। कि भटनागर जी के कथानक का दायरा विश्तृत है। उसमें ग्रामीण जीवन के साथ–साथ महानगरीय जीवन के विभिन्न क्षेत्र और आयाम समाहित हैं। उपन्यासों में चित्रित पात्रों का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण करते हुए पात्रो को प्रमुख, गौण, स्थिर, गतिशील,आदर्श और खल पुरूष–स्त्री पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का आकलन करने का प्रयास किया गया है। संवाद कथानक का विकास, पात्रों के

चरित्र–चित्रण और उद्देश्य के स्पष्टीकरण में सार्थक सिद्ध हुए हैं। आकर्षक और रोचक कथोपकथन पाठकों की जिज्ञासा वृत्ति को बढ़ाते हैं। आपके उपन्यासों में वातावरण का धरातल व्यापक है, इसमें घर–परिवार, समाज तथा नारी के विभिन्न मनोभावों पर प्रकाश डालने के साथ राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक वातावरण को भी उकेरा गया है। भाषा में कहीं आम बोलचाल की भाषा है, तो कहीं गंभीर और आलंकरिक भाषा का प्रयोग किया गया है। भाषा में शब्दों का चयन और वाक्य विन्यास बड़ा ही सार्थक और मन को लुभाने वाला है। अध्याय के अंत में उपन्यास के अंतिम तत्व उद्देश्य की दृष्टि से उपन्यास के शीर्षक कथा उसकी आधारशिला का आकलन करने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः लेखक इन समग्र छः तत्वों का उपन्यासों में यथोचित प्रयोग करने में सफल रहा है।

विश्वबंधुत्व की भावना:

साम्प्रदायिक रचनाकार के लिए धर्मवादी लोगों की नीतियों की भर्त्सना कर उन्हें रोक पाना उसके लिए कठिन है। लेखक ने इसके लिए युवापीढ़ी के मन में सभी धर्मो के प्रति प्रेम की भावना को बढ़ावा देना ही उचित माना है, धर्म की अपेक्षा मानव धर्म को ही सर्वोपरि स्वीकार किया है। इसकी पुष्टि हमें एल्बर्ट के शब्दों से मिलती है। 'मैंने डैड से कहा कि धर्म तो स्कूल है। स्कूल से ज्यादा कुछ नहीं। क्या एक स्कूल में पढ़ने वाला दूसरे स्कूल में प्रवेश नहीं कर सकता? क्या एक धर्म को मानने वाला दूसरे धर्म को अपना नहीं सकता, बिना धर्म परिवर्तन किए।'[7]

लेखक मिलजुल कर रहने का पक्षधर रहा है। यही कारण है कि आपने बढ़ती वैमनस्य और साम्प्रदायिकता की आग में झुलसने की अपेक्षा प्रेम सरिता में बहने का सुझाव दिया है।

भारतीय संस्कृति की विशिष्टता के फलस्वरुप रचनाकार ने संस्कृति के महत्व को अपने उपन्यासों में यथास्थान दिया है। अनेकता में एकता, आपसी भाईचारा, कर्म की श्रेष्ठता, मानव धर्म का पालन और राष्ट्र प्रेम की भावना के रुप में भारतीय संस्कृति की झलक आपके उपन्यासों में दृष्टिगोचर है। मानव धर्म की सेवा को आपने सही अर्थ में धर्म का सत्कार माना है। 'प्यार इंसान की पूंजी है, धर्म है और शासन है। प्यार देने से बढ़ता है, अमनचैन की जिंदगी बसर करना चाहते हो तो घृणा के उपक्रमों को नमस्कार कर दो। प्यार ही वह पारस पत्थर है जो लोहे को स्वर्ण में बदल देता है। [8]

'मानव धर्म की सेवा में ही सच्चे सुख की अनुभूति है। रोशनारा ब्रह्म को छाती से लगाए हुए थी। दामिनी को वह अपनी बेटी मानती थी। वह कहती थी 'ये किस मुए ने नामों में धर्म घुसेड़ा है। नगमा क्या हिन्दू नहीं हो सकती और सरस्वती क्या मुसलमान! सारे मजहब एक....सारी कौम एक ... सबमें एक ही खून।[9]

रोशनारा के घर में दामिनी कपूर व ब्रह्म को प्यार व ममता का ऐसा दुलार मिलता है, जिसे घर में पाना भी कठिन है। मानव धर्म की श्रेष्ठता को 'माटी की पुकार' में दिखाया गया है। 'हमारा एक ही धर्म है– मानव धर्म। हमारी एक ही जाति है, मानव जाति। हम लोग सबसे मिलकर अपना यह अभियान शुरु करेंगें।[10] 'अंदर की आग' की शिवानी मित्तल और 'ब्रह्मकमल' की दामिनी कपूर मानव धर्म में पूरी निष्ठा से लगी हुई है। आजीवन कौमार्य व्रत का पालन करते हुए शिवानी अपना सम्पूर्ण जीवन आदिवासियों के समुचित विकास में व्यतीत कर देती हैं, वहीं पेशे से डॉक्टर दामिनी कपूर शहर की बजाए गाँव में क्लीनिक खोलकर ग्रामीण वासियों का मुफ्त ईलाज करती है। 'एस.पी. मुल्ला जोर से हंस पड़े, फिर कहने लगे, अपनी डॉक्टर साहिबा की गाँव में कितनी शोहरत हो उठी है, जनाब, गरीब गुरबों से एक पैसा नहीं लेती, उन्हें दवाएं भी अपने पास से देती हैं।''[11] मानवता की सेवा करने के उद्देश्य से ही आपके पात्र तन, मन और धन से जुटे हुए हैं।

कर्म की प्रधानता :

लेखक को भाग्यवाद के सहारे जीवन व्यतीत करना अभीष्ट नहीं है, इसलिए आपने कर्म की महत्ता को स्वीकार किया है। भाग्य के सहारे बैठने की अपेक्षा आपके पात्र कर्म की महत्ता पर बल देते हैं। वे कर्मवादी बनकर अपना ही नहीं समाज का उत्थान करने में संलग्न है। 'माटी की गंध' उपन्यास में पुण्या अपने साथियों के साथ गाँव वासियों की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करती है, वह कहती है 'यह उपेक्षित बस्ती ही हमारे शरीर–मन की हमारी प्रयोगशाला है, जहाँ जाकर हम सीख सकते हैं और तय कर सकते हैं कि हमें अपनी समस्याओं का हल कैसे करना है? वही गीता–कुरान और रामायण है। वही गुरु ग्रन्थ साहब, बाइबिल आदि सब कुछ हम हैं। हम कुछ जानते हैं और कुछ कर सकते हैं, यही सिद्ध करना है।[12]

पुण्या ने केवल गाँव वालों को साक्षर बनाती है, अपितु साथ ही गाँव में लघु कुटीर उद्योग खोलकर हजारों लोगों की आजीविका का द्वार खोल देती है। कर्म के संबंध में प्रोफेसर हकीम का मत है 'जब चींटी चिंता नहीं करती, ऊँट चिंता नहीं करता, हाथी चिंता नहीं करता, तो हम तो इन सबसे उन्नतिशील हैं। हमारे पास आशा का अमृत है। उसे जो छककर पीएगा, वह मरकर भी जीएगा – राम, कृष्ण, शिव, महावीर, बुद्ध, गांधी की तरह। आशा कभी भी हाथ पर हाथ धरकर बैठने नहीं देती। उसकी फसल लगातार कर्म करने से लहलहाती है। दादा के चेहरे पर आत्मसंतोष था, उनकी आँखों में ज्योति थी और प्रसन्नता भी।[13] कठिन परिश्रम के बल पर ही प्रोफेसर हकीम अकाल पीड़ित गाँव में तालाब बनाने का असंभव कार्य करते हैं और गाँव को हरा–भरा बनाने में समर्थ होते है। वास्तविकता में लेखक कर्म के महत्व को स्वीकार करता है, विपरीत परिस्थितियों में भी आप लेखन कार्य में पूरी निष्ठा और लगन से जुटे रहे, जिसका परिणाम विविध कृतियों के रुप में दृष्टिगोचर होता है । आपकी श्रेष्ठ कृतियाँ जिसका प्रमाण है।

संशोधित संस्कृति में आस्था :

भारत के अनेक रीति–रिवाज भारतीय संस्कृति के परिचायक है। संस्कृति का वास्तविक तात्पर्य है आचरणगत परंपरा। यानी किसी समाज की वे सब बातें जो उसके

आचार–विचार और विकास की सूचक होती है।[14]

'माटी की पुकार' में मनीषी मां के पैरों को पूजती हैं। बेटी के स्नेहिल प्यार को देखकर मां का मान प्रसन्न होता है, वहीं रुढियों एवं परंपराओं की परिपाटी में बंधकर अपने पैरों को पीछे खींच लेती है। 'ना बेटी ना। बेटी के पांव मां–बाप पूजते हैं। उससे पांव नहीं दबवा सकते। लड़की को विदा करते हुए–कन्यादान करते हुए भी मां–बाप उसके पांव पूजते हैं। यह शास्त्रों की बात है, इससे कोई इंकार नहीं हो सकता।[15]

इंद्रेश्वरी सिमरण से कहती है 'पगली से रस्में ही तो हमारी संस्कृति है। हमारी इन्हीं से सारे जगत नूं पहचान है। अब तो विदेशी भी हमारी शैली में शादी कराकर खुशी मना रहे है।[16]

इंग्लैंड में रहने वाली जुलिया भारतीय संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित है। वह वाग्देवी से कहती है–' आपका देश रिश्तों की गहराई में सुख–दुख जीता है, आपसी गर्माहट में एक दूसरे को गूंथ लेता है। रिअली, यह बहुत प्लेजर देता है और सुकून। बहन–भाई, चाचा–चाची, ताऊ–ताई, पड़दादा–पड़दादी, नाना–नानी, फूफा–फूफी। प्यार और ममता का ऐसा गहन फैलाव, सच में इस धरती पर अन्यत्र कहीं नहीं है।[17]

भारतीय संस्कृति से प्रभावित वैट्रैस वुल्ला भारतीय युवक से शादी करने की इच्छुक है। वह हिमाशुं से कहती है, 'मेरा ध्यान भारत की ओर गया। भारत की संस्कृति–सामाजिक धरोहन ने मुझे प्रभावित किया। अब देखना है हिमांशु, तुम मुझसे शादी करोगे या नहीं।[18]

भारत की गौरवमयी संस्कृति से प्रभावित होकर विदेशी युवती का भारतीय युवक से विवाह की इच्छा, बेनजीर हुसैन खां पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव न पड़ना सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यकत करता है

संदर्भ ग्रंथ

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 20
2. डॉ. हजारी प्रसाद, द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ. 58
3. डॉ. देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ. 173
4. वाचस्पति गैरोल, भारतीय संस्कृति और कला, पृ. 61
5. राजेन्द्रमोहन, देवलीना, पृ. 37
6. राजेन्द्रमोहन, जिंदगी का एहसा, पृ. 38
7. राजेन्द्रमोहन, जिंदगी का एहसा, पृ. 27
8. राजेन्द्रमोहन, वाग्देवी, पृ. 259
9. वही, ब्रह्मकमल, पृ. 104
10. वही, माटी की पुकार, पृ. 52
11. राजेन्द्रमोहन, ब्रह्मकमल, पृ. 108
12. वही, माटी की गंध, पृ. 89
13. राजेन्द्रमोहन, माटी की गंध, पृ. 93
14. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में समाज जीवन, पृ. 301
15. राजेन्द्रमोहन, माटी की पुकार, पृ. 25
16. राजेन्द्रमोहन, सबक, पृ. 174
17. वही, वैलेंटाइन–डे, पृ. 100
18. वही, पृ. 262